मासिक विवेचन

भक्त भारत

K. P. SA... LIBRARY
No.........
Date.........
JAMMU

क्रान्ति

धार्मिक * सामाजिक

सांस्कृतिक

वर्ष १] [अङ्क ६-७

चार सम्प्रदाय आश्रम वृन्दावन द्वारा

प्रकाशित

ब्रज के मधुरतम भावों से ओत-प्रोत राधा-माधव की लीला-वैचित्री से पूर्ण, रसिक शेखर सूरदास श्रीविल्वमङ्गल की मधुमयी पीयूष-वाणी

श्रीकृष्ण-कर्णामृत

पुनः प्रकाशित हो रहा है। इस महान् ग्रन्थ का हिन्दी में प्रथम प्रकाशन सन् ४८ में 'भक्त-भारत' मासिक-पत्र विशेषाङ्क के रूप में हुआ था, उस समय इसकी तीन हजार प्रतियाँ हाथों-हाथ निकल गईं। मद्रास और पूना विश्वविद्यालयों ने अनेक बार इस रस-शास्त्र की माँग की है।

इस बार ग्रन्थ के प्रकाशन में पूर्ण सावधानी बरती जा रही है, भाषा, भाव और वस्तु प्रतिपादन में ब्रज के रसिक विद्वानों का सहयोग प्राप्त है, प्रूफ संशोधन का कार्य भी विद्वान्-जन करेंगे। बढ़िया कागज एवं आकर्षक छपाई तथा सुगठित बाइण्डिङ्ग और मनोहारी कवर के साथ यह ग्रन्थ अपने ढङ्ग का अनूठा होगा।

ग्राहकों को सुविधा—

डिमाई साइज में सुन्दर ऐण्टिक पेपर पर छपे लगभग ७०० पृष्ठ के **"कृष्ण-कर्णामृत"** की कीमत १०) होगी।

किन्तु—जो प्रेमी भक्तजन अग्रिम १०) भेज देंगे, उन्हें डाक व्यय तथा वी. पी. खर्च के २) नहीं देने पड़ेंगे। बाद में खरीदने पर ग्रन्थ आपको १२) में पड़ेगा। अतः आज ही १०) का मनीआर्डर भेजकर ग्राहक-सूची में नाम लिखा लें।

पताः— व्यवस्थापक-**'भक्त-भारत' मासिक**

कार्यालय-चार सम्प्रदाय आश्रम, पो० वृन्दावन (मथुरा)

अनुक्रमणिका

लेखक	लेख	
[कविता]	रसिया होरी	१
सम्पादक	एक करोड़ गो-पालन योजना	२
श्रीस्वामी जयरामदेव जी	दिव्य गौलोक में युगल-दर्शन	३
बाबूराम शास्त्री	निर्मम गो हत्या	९
गोस्वामी रामगोपाल	भक्ति	१४
कुमारी शकुन्तला शर्मा	भक्ति और नारी	१७
[कविता]	निराश न होकर प्रभु कृपा पर विश्वास करो।	२४
चतुर्भुजदास रावत चतुर्वेदी	भक्त और भगवान	२५
[कविता]	तिलक-भावना	२६
[कविता]	हे मनमोहन टेक निभादो	२७
पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी	कवि सम्मेलन	२८
[कविता]	ब्रज की होरी	३२

धार्मिक,सांस्कृतिक,सामाजिक-क्रान्तिका मासिक-विवेचन

भक्त भारत

वर्ष १ } जनवरी-फरवरी १९६७ { अङ्क ६-७

ब्रज कौ

दिन-दूलह

रंग भरचौ ॥

रसिया ★ होरी

हो होरी खेलैं छैल छबीले राधा मोहन रंग भीने ॥
अतर अरगजा मुख लपटावै भौंह चढ़ति मन हरि लीने ॥
भेद भीतरी बातें कहि कहि उर आनंद अंकुर कीने ।
वृन्दावन हित रूप छके दोऊ मदन केलि रस परवीने ॥

गोरी तेरे नैंना बड़े रसीले ।
विहँसि उठत निरखि मेरौ मुख घूँघट पट सकुचीले ॥
फागुन में अैसी न चहिये ये दिन रंग रंगीले ।
ललितकिशोरी गोरी खंजन बिन अंजन कजरीले ॥

होरी खेलौ तो कुञ्जन चलौ गोरी ॥ टेक ॥
एक ओर रहो सब ब्रज बनिता तुम रहो राधे, हमरी ओरी ॥
चोवा चंदन अतर अरगजा, लाल गुलाल भरे झोरी ॥
ललितकिशोरी प्रिया-प्रीतम मिलि, खेलेंगे फाग सराबोरी ॥
होरी खेलौ तौ कुञ्जन चलौ गोरी ॥

एक करोड़ गो-पालन योजना

भारत के प्रत्येक जिले में एक-एक लाख गऊ पालने के गोपालन-केन्द्र खोले जांय। ऐसे लगभग १०० के द्र खोले जांय। इस प्रकार एक करो गऊ पाली जांय तो उनका दुग्ध प्रतिदिन लाखों मन प्राप्त हो सके। प्रत्येक केन्द्र बड़े जङ्गलों में हो। जहां काफी घास चरने को प्राप्त हो। सैकड़ों अहीर तथा मैनेजर रहें, रक्षा के लिये सिपाही सशस्त्र रहें। दीवाल तारों लकड़ियों से घेर कर बने फूस के नीचे गउएं रहें। गउओं की चिकित्सा के लिये पास ही हास्पिटल हो।

केन्द्र के समीप दुग्ध से मक्खन आदि पदार्थ हजारों मन रोज बन सकें। दूध तथा मक्खन भेजने के लिये मोटर आदि रहें। इस योजना से भारत में लाखों मन घी-दूध रोज मिल सकेगा। गऊवें बछिया बछड़े प्रति वर्ष देंगी जिससे दूनी दूनी संख्या में गऊवें बढ़ती जांयगी। एक अहीर ने एक गऊ पाली उससे ५ वर्ष में ६ गउवें हो गयी थीं। ऐसे गउवें बढ़ती चली जाती हैं। अच्छी जाति की अधिक दूध देने वाली गउवें भी विलायतों से भी खरीद कर मँगाई जांय उनकी सन्तानें बढ़ती जायेंगी। करोडों गउओं में से अपनी मृत्यु से ही मरने वाली लाखों गउवें होंगी इस प्रकार चर्म की भी कमी नहीं रहेगी।

गउओं से खाद तथा गैसें भी बनती हैं जिससे लाखों गऊओं के गोवर से बिजली भी बन सकती है। गोवर के अनेकों प्रयोग वैज्ञानिक लोग कर रहे हैं।

जनता मँहगाई के कारण गऊ पाल नहीं सकती। चरने के स्थान शहरों में नहीं हैं। दाना खिलाने से आमदनी से अधिक खर्च पड़ता है। जैसे खाद के कारखाने खोले जाते हैं वैसे ही घी दूध उत्पादन के यह कारखाने खोले जांय। करोड़ों रुपये इस योजना के लिये लगाये जांय। प्राचीन काल में राजा लोग ही लाखों गऊ पालते थे। इतिहास प्रमाण है।

—सम्पादक

लेख ● श्रीस्वामी जयरामदेव जी

दिव्य गौलोक में युगल-दर्शन

अलौकिक ऐश्वर्य मय भगवान् का वह परमधाम है। उस लोक में मणिमय भूमि, दिव्य-वन, उपवन, सरोवर, लतामण्डप, अनन्त निकुञ्ज, खेल के विनोद के सामान, दिव्य विमान, क्रीड़ा भवन आदि हैं जो स्वर्ग से करोड़ों गुना सुन्दर हैं। उस लोक में महान् तप करने वाले जो भक्तजन गये हैं, उनके साथ नित्य नई लीलाएँ भगवान् करते हैं। उस धाम की लीलाओं की झलक मात्र ध्यान में स्मरण आने से जगत् के विषय-विकार छूट जाते हैं और योग-समाधि लग जाती है।

प्रथम दृश्य

मणि-मन्दिर में प्रिया प्रियतम सुमन शय्या पर शयन कर रहे हैं। श्रुति रूपा सखियां वीणा लेकर दिव्य गान कर जगाने लगती हैं।

विनोद के लिए एक सखी कहती है—'अरी सखियो ! हमारे संसार के सम्राट और साम्राज्ञी शयन कर रहे हैं, इनको सुखमय नींद में हम क्यों बाधा दें, इसलिए इन्हें आनन्द में शयन करने दीजिये। क्योंकि-इनके सुख में हमें सुख मानना चाहिए। यही हमारा सेवा-धर्म है।"

यह सुन कर दूसरी सखी कहने लगी—"किन्तु, सखी ! हम लोग इनको अपने सुख के लिये ही नहीं जगातीं। जब यह उठेंगे तो लीलाएँ करेंगे और लीला का आनंद दोनों स्वयं ही प्राप्त करेंगे। हमारे लिये तो यह जगाने की सेवा सौंपी गयी है, सो इस समय इन्हें जगाना ही हमारा सेवा. धर्म है।" इतने में महल के चारों ओर सुन्दर वाटिका में रहने वाले दिव्य-पक्षी बोलने लगे। उन पक्षियों का विशाल कलरव सुनकर सखियाँ गाने लगीं—

"मोर न शोर करो अति जोर सों, जागेंगे काची ही नींद में प्यारे।
कोकिल तेरे अलाप सों चौंकि हैं, क्यों न रहै चुप एते सकारे॥
सारिका क्यों बकबाद करै शुक, धीरे से प्यारे के नाम उचारे।
कूजत क्यों कल हंस रहौ चुप, सोवत हैं प्रिय प्राण हमारे॥"

तदनन्तन सखियाँ अत्यन्त मन्द स्वर से प्रभाती राग गान कर जगाती हैं—

जागो युगल रूप सिन्धु प्रेम सिन्धु प्यारे।
कञ्ज खिले मंजु भ्रमर गुञ्जत मतवारे॥
मंगल फल फूल थाल कञ्चन कर धारे।
आई सखि वृन्द सकल दरस को तुम्हारे॥
चटकि कें गुलाब कली कहति कुञ्ज द्वारे॥
उठहु प्राण जीवन धन नैनन के तारे॥

इस प्रकार अनेक पद गायन करने पर भगवान उठते हैं। श्री स्वामिनी जी की उस समय आलस्य भरी शोभा श्रवर्णनीय है। उस शोभा की एक विनोद भरी झांकी देखिए—

"आज दोउ जागे अति अलसात।
मूंदे नयन अटपटे वैना, नहिं सँभार निज गात॥
नींद विवस ह्वै पूछत प्यारी, साँझ भई कै प्रात।
कहन चहत है प्रात साँवरे, मुखसों निकसत रात॥
झूमत गिरत परस्पर ऊपर; देखि सखी मुसकात।
'नारायण' या अद्भुत छवि कों, निरखत मन न अघात॥

मणिमय सुमन शय्या पर दोनों ही जागने की अपनुम झाँकियाँ दिखला रहे हैं। आनन्दोल्लास में भरे कुछ नयन कमल अधखिले से प्रतीत होते हैं। पुष्प-मालाएँ एवं अलकावली उलझ-सी रही हैं। सेज रूपी सरोवर से सुगन्ध की तरंगें उठ रही हैं। प्रकाशमान अङ्गों में अङ्ग प्रतिबिम्वित होरहे हैं। उस समय सखियाँ आकर पुष्पमालायें अर्पण कर प्रणाम करती हैं। श्रृङ्गार सुधार कर मालाएँ धारण कराती हैं। मंगल कृत्य कराके दर्पण दिखा के तथा मंगल द्रव्य-दर्शन कराके माखन मिश्री भोग लगाती हैं। फिर मंगला-आरती करके पुष्पांजली अर्पण कर प्रणाम करती हैं।

द्वितीय दृश्य

आनन्द पूर्वक अपने कर कमलों में दर्पण लेकर देख रहे हैं। दोनों ही अपने-अपने मुखचन्द्र की छटा देख देख कर श्रृङ्गार सँवार रहे हैं। उसी समय सखियों ने आकर प्रार्थना की कि—"वाटिकाओं में भ्रमण के लिए पधारें। देखिये! आपके दर्शनार्थ अनेक भक्त वृन्द व्याकुल हो रहे हैं। शुक सारिका आपकी बाट जोह रहे हैं कि आवें और कब हमें दुलार करें।

मृग-वृन्द पंक्ति बना कर खड़े हैं आप चलें, उनको मालाएँ पहिना कर प्रफुल्लित करें।"

सखियों की प्रार्थना पर-वाटिका-विहार के लिये चले। मणिमय मन्दिर में चलते समय पृथ्वी में चरण कमलों की छवि दिखाई दे रही है। आभूषणों की जगमगाहट से भूमि पर चन्द्र चाँदनी सी छिटक रही है।

जब पुष्प वाटिका की सघन वीथी में चलते समय श्री स्वामिनी जी लता हटा कर चलती हैं तब भगवान आगे जाकर लता स्वयं ऊँची करके आगे खड़े हो जाते हैं। उस समय सघन लताओं में जहाँ चारों ओर फूल खिले हैं, झुक झुक कर दोनों किशोर किशोरी निकलते हैं तब बड़ी सुन्दर छटा प्रतीत होती है। आगे चल कर भगवान का पीताम्बर गुलाव-लताओं में उलझ गया। स्वामिनी जी स्वयं पीताम्बर छुटाने लगीं उसी समय स्वामिनी जी का मुक्ता-हार डालियों में उलझ गया। तब सखियाँ आकर दोनों के वस्त्राभूषण सुलझा देती हैं।

भगवान अपनी आह्लादिनी शक्ति को सर्वदा आनन्द देने की रुचि रखते हैं और श्री स्वामिनी जी भी सर्वदा अपने प्राणनाथ की इच्छा में इच्छा रखती हैं। आगे सघन वाटिका में जब कदम्ब वृक्ष के पास पहुँचे तो उसका प्रफुल्लित पुष्प देखकर स्वामिनी जी ने तोड़ना चाहा-पर ऊँचा होने से हाथ नहीं पहुँचा। भगवान ने श्रीजी को कुछ ऊँचा उठा दिया-कहा कि कदम्ब की डाल पकड़कर लटक जाओ और फूल तोड़लो। जब श्रीजी ने कस कर कदम्ब की डाली पकड़ली और फूल तोड़ने लगीं तो भगवान श्रीजी को छोड़कर अलग हट गये। श्रीजी कदम्ब पर लटक गईं। सखियाँ सब ताली बजा बजा कर हँसने लगीं। श्रीजी जब खीझ खीझ कर पुकारने लगीं—कि इस वृक्ष से उतारो, तब भगवान ने आकर उतार लिया।

आगे सरोवर के निकट पहुँचे। वहाँ पर छोटे छोटे हंसों के बच्चे खेल रहे थे। उन हंसों को देखकर श्रीजी ने कहा—"हे प्राणनाथ! यदि आप वीर हैं तो आज कुछ अपनी वीरता प्रकट कीजिए।" भगवान ने कहा—आज यहाँ वीरता का क्या कार्य है, यहाँ पर कौन सा युद्ध हो रहा है जो वीरता प्रकट करूँ। यह सब बातें तो मृत्युलोक में होती हैं।" श्रीजी ने कहा - यहाँ युद्ध की वीरता नहीं चाहिए। यदि इस हंस को पकड़ लाओ तो मैं आपको वीर समझूँ।" यह सुनते ही भगवान पीताम्बर कस कर दौड़ पड़े। किन्तु, चञ्चल हंस हाथ नहीं आया, उड़ गया। थोड़ी देर आकाश में उड़कर वह हंस फिर उतर आया और पृथ्वी पर विचरने लगा

तब भगवान ने पीछे से जाकर उस हंस पर अपना पीताम्बर डाल दिया। किन्तु, वह हंस उस महीन रेशमी पीताम्बर को ही लेकर उड़ चला। उस पीताम्बर की फहरान को देख श्रीजी के आनन्द की सीमा न रही। सहसा वह पीताम्बर हंस के पंखों से छूटकर लतावृक्षों पर जा गिरा। सखियाँ सब भगवान की वीरता की बड़ाई करने लगीं। अत्यन्त लज्जित होकर भगवान ने अपनी दिव्य शक्ति से उछल कर आकाश में उड़ते हंस को पकड़ लिया और श्रीजी को लाकर दे दिया। श्री स्वामिनी और सखियाँ यह कौतुक देख कर अत्यन्त आनंदित हुईं। भगवान को उनकी वीरता के उपलक्ष में एक नवीन हार मँगवा कर पहनाया और उस हंस को दिव्य दुग्ध मँगवा कर पिलाया।

मालती–माधवी आदि ललित लताओं के मध्य में कुछ शुक बैठे हुए नाम कीर्तन कर रहे थे। भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। कोकिल ने सहसा इन दम्पति को आते देखकर अपनी तान छोड़ दी। कोकिला की स्वर लहरी सुनते ही मयूर भी नाच उठे। उन रंग-बिरंगे मयूरों का नृत्य देखकर सब सखियाँ भी नये-नये राग-गान कर आलाप भरने लगीं। एक मयूर का नृत्य देखकर श्री किशोरी जी अत्यन्त प्रसन्न हुईं उस मयूर के श्यामल कंठ में पीत चमेली का हार डाल दिया। उस मयूर की शोभा देख भगवान स्वयं प्रशंसा करने लगे। उसी समय एक सखी बहुत से फूलों के गेंद बना कर ले आयी। उन कई रङ्गों के पुष्पों से बने रङ्गीन गेंदों को ले लेकर खेल प्रारम्भ कर दिया गया। उस समय श्रीजी ने गेंद के खेल में बड़ी चतुराई दिखलाई। उस समय भगवान भी अपनी जीत होने के लिये कलाएँ प्रदर्शित करने लगे। गेंद उठाने में—झुकने में, उछलने में, दौड़ने में, श्रीजी के हार हिलते और भगवान के कुण्डल हिलते हैं उस समय रत्न आभूषणों की चमक बड़ी सुन्दर लगती है। सखियों की चोटियों में से लगे फूल बिखरते हुए बड़े सुन्दर लगते हैं। इसी प्रकार हार-जीत विनोद में नाना प्रकार की झांकियों का आनन्द प्राप्त होता है।

खेलों में श्रमित होने के पश्चात स्नान भवन में पधारे। यह एक दर्पण का भवन है। चारों ओर शीशे ही शीशे लगे हैं। इस भवन में चारों ओर पूर्ण प्रतिबिम्ब दर्शित होते हैं फूल के गमलों के मध्य में रत्न मई चौकी पर दिव्य दम्पति स्नान करते हैं वहाँ जल यन्त्र लगे हुए हैं जिनसे फुहारे छूट कर सहस्रों धाराएँ पड़ रही हैं। सुगन्धित उबटन–तैल आदि लगा कर सखियों ने भली भाँति स्नान कराया। कोमल वस्त्र से अङ्ग पोंछ कर वस्त्र धारण करके शृङ्गार-भवन में पधारे। दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित

शृङ्गार-भवन की शोभा अपार है। जब श्रीकिशोरीजी शृङ्गार भवन के सिंहासन पर आकर बैठीं और अपनी कोमल उँगलियों से स्वयं ही केशों को सुधारने लगी उस समय नख चन्द्रों की छटा ऐसी प्रतीत होती है मानो घन के ऊपर तारे चमचमा रहे हों। मुखारविन्द का प्रकाश ऐसा लगता है मानो सैकड़ों चन्द्रमा उदय होगये हों। केशों को सुखाकर सखियों ने वेनी गूंथी। लाल, पीले, हरे, श्वेत रंगों के फूल बीच बीच में लगाकर वेनो गूंथी गयी। मोतियों से सिन्दूर से माँग सँवारी गयी।

श्री किशोरी जी सहसा दर्पण लेकर मुख छवि देखने लगीं उस गोलाकार दर्पण में माँग की छवि ऐसी प्रतीत होतो है मानो सूर्य मंडल में चन्द्र मण्डल हो, और चन्द्र मंडल में त्रिवेणी बह रही हो।

एक सखी चरण में महावर (यावक) लगाने लगी। नाना प्रकार के छोटे छोटे चित्र चरणों में बनाने लगी। मोर, शुक, सारिका, गुलाव, कमल आदि पुष्प बना के बीच में सखी ने अपना भी चित्र बना दिया। यह देख कर श्रीजी ने सखी से पूछा कि तूने मेरे चरणों में अपना चित्र क्यों बना दिया ? तो सखी ने उत्तर दिया कि—"इसलिये कि सदा आपके चरणों में ही बनी रहूँ।" अब नख-शिखशृङ्गार प्रारम्भ हुआ। तिलक, कज्जल, नासामुक्ता, श्रवण ताटंक, चिबुक में श्याम विन्दु, कंकण, शीश चन्द्रिका, किंकणी, नीली साड़ी, हरी कंचुकी, अनेकों प्रकार के हार, मुद्रिका, चरणों में नूपुर, पायल आदि धारण करा कर सखियों ने देखा तो ऐसा प्रतीत हुआ-मानो शोभा की सीमा होगई।

इधर भगवान का नख शिख शृङ्गार किया गया। चित्रमय तिलक, कुण्डल, मुकुट, मुक्ता, अङ्गद, किंकणी तथा पीताम्वर सुशोभित वक्षस्थल पर मुक्ताहार, वैजन्ती रत्नमाला, कौस्तुभमणि, बनमाला, चरणों में यावक चित्र आदि। इस प्रकार शृङ्गार करके जब दोनों ही विराजमान हुये तब सखी ने दर्पण दिखलाया। स्वयं ही अपनी शोभा देख देख कर आनंद लहरों में बहने लगे।

अब सखियों ने शृङ्गार-भोग लाकर समर्पण किया। स्वर्ण थालों में नाना प्रकार के मिष्ठान्न, पकवान, फल, मेवा आदि पदार्थ भोजन कराये आचमन कराके, पान देकर फूल मालायें धारण कराके आरती की। इसे शृङ्गार आरती कहते हैं।

दिव्य शृङ्गार अङ्ग २ में धारण कर सखियों सहित क्रीड़ा-विपिन में विनोदार्थ चल दिये। जब बन को शोभा अवलोकन करने लगे तब प्रत्येक वृक्ष झुक झुक कर प्रणाम करने लगा। लताएँ पङ्खा करने लगीं। सुगंधित समीर चलने लगी वहाँ पर—

"हरी भरी अवनी अति अद्भुत, लता पता मन मोहन हार।
जाहीं जुही चमेली चम्पा, चटकी कुन्द तुलसी मंदार॥
फूल गुलाब, दाउदी गेंदा, सोनजुही वर हारसिंगार।
गुलतुर्रा गुलवांस मोंगरा, फूल मोतिया अरु कचनार॥
लता-वेलि वृक्षन लपटानो, लहकत पत्र-पवत नवडार।
कुञ्ज कुञ्ज तर दैं गलबाहीं, निरखत फिरत युगल सुकुमार॥"

उस अपूर्व शोभा को देख कर भगवान कहने लगे—अहा! आज तो यह बन अत्यन्त सुशोभित हो रहा है? क्या कारण है? यह सुन कर एक सखी कहने लगी कि—

यह बन आप ही सों सुहात।
परत जहँ तुव चरण तहँ कछु होत अद्भुत बात॥
फूल, फल, द्रुम, बेलि, वीरुध, सकल अति सरसात।
वृक्ष चढ़ि शुक, सारिका, पिक, बोल फूल झरात॥
डार, द्रुम, फल भार सों झुकि, झूमि भू पर जात।
मनहुँ फल दल भेट लै तुव पद कमल शिर नात॥
मत्त मधुकर वृन्द रस मय, मधुर शब्द सुनात।
मनहुँ "बल्लभ" आगमन लखि, विमल तुव जस गात॥

यहां तक कुछ प्रातः काल की झाँकी का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् मध्याह्न के समय भोजन तथा शयन, मध्याह्न के बाद तीसरे प्रहार में उत्थापन, उठकर बनों में सखाओं के साथ उनका वाटिकाओं में, मोती महल में तथा रङ्गीन महल में नाना प्रकार के कौतुक पूर्ण चरित्र होते हैं। नौका में विहार करते हैं, सन्ध्या आरती फिर राज भवन में साँझी दर्शन लीला एवं मानलीला, पश्चात् ब्यारू भोग व पुष्प शैया बनाकर उस पर शयन कराना चरण सेवा करना।

यहाँ तक एक दिन की लीलाओं के जो संकेत किये गये हैं, उन लीलाओं की विस्तार से भावना करनी चाहिए। कल्पना करते करते स्वयं ही लीला हृदय में उदय होने लगती है जो लीला समझ में न आवे उसे अपने भावानुसार हर एक लीला में सेवा करनी चाहिए। जब कल्पना सिद्ध हो जाती है, जगत् भूल जाता है समाधि लग जाती है कभी-कभी यह ध्यान योग ऐसी शीघ्रता से सफल होता है कि ध्यान में भगवान से वार्तालाप तक होने लगता है। ध्यान में पहले मन नहीं लगता, भागता है। परन्तु मन लगे या न लगे नित्य प्रति ध्यान में बैठना चाहिए। जब लीलाओं का सुख मन को अनुभव होता है।

लेख • बाबूराम शास्त्री

निर्मम गो हत्या

क्या आप मानव हैं ? क्या आप आर्य हैं ? क्या आप हिन्दू हैं ? क्या आप राम, कृष्ण के वंशधर हैं ? क्या आप राणा-शिवा के अंशधर हैं ? क्या आपकी धमनियों में अभी पूर्वजों का रक्त प्रवाहित हो रहा है ? यदि हाँ, तो निश्चय ही आप निम्न अवतरणों को पढ़कर गो रक्षा के लिये, मनसा, वाचा, कर्मणा कुछ न कुछ अवश्य करेंगे।

हृदय थामकर सुनिये :—

(१) गायों को कसाई खाने तक पहुँचाने में सहायता करने वाले चोरों और दलालों का दल चिरकाल से कार्य कर रहा है। चोर गौओं को चुरा ले जाते हैं। उन्हें भूखा रख कर कान, पूंछ या और कोई अन्य अङ्ग काट कर इतना कुरूप बना देते हैं जिससे वह पहचानी नहीं जा सकतीं। पहिचानने का डर न रहने पर गायों के टोल के टोल मुमूर्ष दशा में कसाई खानों में जाकर बेच आते हैं उनकी खालें जीवित दशा में ही खरीद ली जाती हैं। दलालों को गाय खुले आम सस्ती नहीं मिलती तो वे बाहर निकलते हैं और घास चारे में विष मिलाकर चुपचाप गौओं को खिला देते हैं। गोचर भूमि में जहरीली चीजें बिखेर देते हैं। गौओं के कोई घाव होता है तो छुरी, भाले आदि में विष लगा कर गायों के शरीर में चुभो देते हैं, ऐसी चीजें खिला देते हैं जिससे पशुओं में छूत की बीमारियाँ फैल जाती हैं। इस प्रकार कई तरह से गायों का नाश करते हैं। इसलिये पुलिस विभाग में शिक्षा दी जाती है, जहाँ गायों में छूत की बीमारियाँ फैली हों या गायें अधिक मर रही हों वहाँ देखना चाहिये पास में कौन लोग ठहरे हुए हैं, ये लोग तरह तरह के वेशों में आया करते हैं और गायों पर अपना जादू चल जाने पर उन्हें मृत या मुमूर्ष दशा में खरीद लेते हैं और कसाई खानों में बेच कर उनका वध कराते हैं।

(२) कुछ किसान अपने खेतों में आने वाली गायों को यमराज की तरह मारते हैं। मुझे ज्ञात है एक हत्यारा इतने जोर से गौ को मारने दौड़ा

कि वह भयभीत होकर भागते कुएँ में गिर गयी और मर गयी। एक व्यक्ति ने रात्रि में इतनी निर्दयता से मारा कि गौ घर जाकर मर गयी। दूसरी घटना जिस गौ के साथ हुई थी उसके मालिक ने धार्मिक व्यक्तियों की पंचायत जोड़ी। पंचायत ने २१) गोशाला को दान और गङ्गा-स्नान का दण्ड दिया। आज प्राणों के बदले प्राण लेकर सच्चा न्याय करने की सामर्थ्य किसमें है ?

(३) कुछ लोग बैलगाड़ियों पर इतना अधिक बोझा लादते हैं कि वह चल ही नहीं सकते। तब डण्डों से मारते हैं। डण्डे की नोंक पर तीव्र धार वाली लोहे की नुकीली आरी लगी रहती है जिसकी चोट से रक्त बहने लगता है और मर्म स्थल पर चोट लगने पर पशु मर भी जाते हैं।

(४) कुछ लोभी दुग्ध व्यवसायी गायों को फूँका क्रिया से दूहते हैं। योनि में पशु की पूँछ, अपना हाथ अथवा ४ इंच मोटी और १८ इंच लम्बी पुआल की एक कूँची डाल देते हैं, उस समय गाय को बड़ी भयङ्कर पीड़ा होती है, वह काँप उठती है, आँखें बाहर निकल आती हैं और करुण स्वर से कराहने लगती है। इस क्रूर क्रिया के फलस्वरूप अगले व्यात में ही वन्ध्या हो जाती है और कसाई के यहां पहुँचकर कट जाती है।

कुछ ग्वाले पूँछ मरोड़ कर योनि में नित्य एक इंजेक्शन देते हैं जो उन माताओं के लिये निर्मित हुआ है जिनके स्तनों में प्रसव क्रिया के बाद दूध नहीं उतरता, इस इंजेक्शन के लगाने पर गौ को भयङ्कर पीड़ा होती है और वह दूध की अन्तिम बूंद तक बाहर निकालने को विवश हो जाती है।

(५) बडे-बड़े शहरों में नवजात बछड़ों और पड़वों पर अत्याचार होता है, उन्हें बेकार झंझट समझा जाता है, अतएव दूध से सर्वथा वंचित रखकर भूखों मार दिया जाता है। बम्बई में सार्वजनिक गोशालाओं में मरे हुए बछड़ों को बैल गाड़ियों में लादकर दूर हटाने का पैशाचिक कलंकित कर्म प्रायः नित्य देखा जा सकता है।

(६) जब गाय वृद्ध हो जाती है, उससे दुग्धादि का लाभ नहीं दीखता तो कुछ लोग गाय को आम के पत्ते खिला कर रखते हैं। उसे और कोई दूसरी वस्तु खाने पीने को बिलकुल नहीं देते। उस गाय का मूत्र अत्यन्त पीला होता है, उसे बाजार में खूब दाम लेकर बेचते हैं, बेचारी गाय भूख प्यास से तड़प कर कुछ दिनों में चल बसती है, इस मूत्र से प्यूरी नामक पीला रङ्ग बनाया जाता है।

(७) कुछ लोग बड़े बड़े नगरों में तीर्थों में मेलों के अवसर पर ऐसी गाय या बैलों को लिये फिरते हैं जिसके पुट्ठे या कमर में पांचवा पैर लटका रहता है या जीभ की शकल की कोई चीज होती है। ये लोग मानव देहधारी राक्षस होते हैं और हिन्दू साधुओं के वेश में घूमा करते हैं। गाय को सजाकर घंटी बजाकर भोले नर नारियों को 'पाँच पैर की गो माता की पूजा कीजिये नन्दी के दर्शन कीजिये।'' आदि कह कर ठगते हैं। गाय बैल जब छोटी अवस्था के होते हैं तभी किसी अन्य पशु को मार कर उसका पैर या कोई अङ्ग काट लेते हैं उसे गाय या बैल के शरीर पर केश काट कर सी देते हैं। कुछ दिनों में मांस बढ़ जाता है, नये केश जम जाते हैं, तब वह सिलाई नहीं दीखती जिस पशु का पैर काटा जाता है उसे तो महान कष्ट होता ही है जिसके नया अङ्ग जोड़ा जाता है उसे भी कम कष्ट नहीं होता। इन वधिकों को पैसा कदापि न देना चाहिये।

कलप कलप कर बछड़े मरते, तड़प तड़प कर गायें।
ऐसे निर्दय देश के मानव, क्यों न अमित दुख पायें॥

(८) स्वस्थ गाय या बछड़े को मशीन के पास बाँध कर खड़ा किया जाता है। तीव्र रक्त वाहिनी नाड़ी को तीक्ष्ण छुरी से काट देते हैं और वहाँ मशीन लगा देते हैं, मशीन खून चूसना प्रारम्भ कर देती है और दो तीन घण्टे में सारे शरीर का रक्त चूस कर एकत्रित कर लेती है। पशु कराहता हुआ प्राण छोड़ देता है यदि आवश्यकता होती है तो मुमूर्ष दशा में छोड़ देते हैं और उसे खिला-पिलाकर पुनः दो तीन बार रक्त ले.

(९) बकरी, भेड़, गौ के व्याने से कुछ दिन पूर्व घुला साबुन, गरम पानी अथवा साना जीव को तेल में तल कर पिलाते हैं, फिर ऊपर बैठ कर उसके पेट को जोरों से दबाते हैं, फलस्वरूप गर्भपात हो जाता है। कभी कभी गर्भिणी दुर्व्यवहारों से भयभीत होकर स्वयं गर्भ गिरा देती है। यदि इस क्रिया में भयानक चोट लग जाती है तो मारकर मांस बेच दिया जाता है। बिजली द्वारा कम्पन पैदा करके भी गर्भपात कराया जाता है, बड़े पशु और नवजात बच्चे की अपेक्षा गर्भस्थ भ्रूण का चमड़ा नरम रोयेदार और लचकीला होने से मूल्यवान समझा जाता है। गायों के गर्भ से निकाले हुए भ्रूण के चमड़े को गो सल्ला कहते हैं। भारत से सहस्रों गोसल्ले विदेश भेजे जाते हैं।

(१०) वृद्ध गौ, बैल, भैंस आदि को ठण्डे पानी के नीचे खड़ा करते हैं, पैर और सिर को मजबूती से बांध देते हैं, जिससे इधर उधर हिल न

सके फिर मुख पर रस्सी का एक जोरदार बन्धन लगा देते हैं जिससे पशु इस निर्दय नृशंसता के विरोधमें एक शब्द भी जबान पर न ला सके और इस दुष्टता को और कोई भी व्यक्ति न जान पाये। इस तैयारी के बाद उन पर पानी छोड़ दिया जाता है, जब पशु खूब तर हो जाता है तो सपसपाती बेतों से उसे खूब पीटा जाता है ऐसी दशा में भूख प्यास से व्याकुल होकर मल-मूत्र करने लगता है। सितारे सी चमकती हुई आखों की पुतलियां बाहर निकल पड़ती हैं, अविरल अश्रुधारा बहने लगती है, वेदना से विकल होकर विवश पशु बुरी तरह छटपटाने लगता है परन्तु वहाँ उसके रोने धोने की किसे परवाह है ? बेतों की निरन्तर मार से शरीर सूज कर फूल जाताहै। रक्त संचार की गति बढ़जाती है उस समय चमड़ा नर्म और मोटा हो जाता है शरीर से रक्त फूटने के आसार दिखायी देने लगते हैं, मरणा-वेला सन्निकट आ जाती है।

उसी समय आतातायी निर्दयो कसाई कटार लेकर निर्दयता पूर्वक टूट पड़ता है और उस पैनी कटार को जोर से मस्तक में चुभो देता है तथा उस रँभाते हुए मूक पशु के शरीर को बीच से चीरता हुआ पूँछ तक पहुँच जाता है फिर सारे शरीर से खाल उतार कर पशु के प्राण ले लेता है।

(११) अधेड़ पशु को खरीद कर कुछ दिनों तक अपने यहाँ रखते हैं, खूब चारा दाना खिलाते हैं, जब वह पूर्ण स्वस्थ हो जाता है तो तेज गरम पानी के नल के नोचे खड़ा करते हैं, पर शिर और मुख खूब कस कर बाँध देते हैं फिर उस पर गर्म पानी का नल छोड़ देते हैं और स्वय भी खौलते हुए इतने गर्म पानी से रगड़ कर धोते हैं। गति की तीव्रता के कारण रक्त की लालिमा बाहर झलकने लगती है, पशु कांप उठता है। वह असह्य जलन उसके शरीर और हृदय को थर्रा देती है उसके जी में भूकम्प आ जाता है, वह मन ही मन इस घोर अन्याय के प्रति अपने भाग्य को कोसता हुआ सिहर उठता है, आंखें तेजी से चारों ओर से कहीं रक्षा करने वाले के दर्शनों की प्रतीक्षा में लालायित रहती हैं, वह अपने लड़कपन से पालने वाले चिर-परिचित मालिक की याद करके रो उठता है, पर वहाँ उसका करुण क्रन्दन कौन सुनता है। कसाई पहुंचता है, तीव्र छुरी से उसको यह लीला समाप्त करके चमड़ा उतार लेता है।

(१२) जवान बछड़ी या बछड़े को साबुन लगा कर पानी से खूब नहलाते हैं फिर बाँध देते हैं और लचकदार बेतों से खूब पिटाई करते हैं, तब बछड़े का नया रक्त उबल पड़ता है। और गति तीव्र हो जाती है तो

मशीन के एक कटघरे के नीचे लाकर खड़ा कर देते हैं। काल की कुटिल मशीन उस पर मँडराने लगती है। तब वह अपनी माँ का लाड़ला लाल काँप उठता है तथा घबरा कर इधर उधर भागने की चेष्टा करता है। जब दुखी बेटे का कोई वश नहीं चलता तो सजल नेत्रों से दुख भरे हृदय को मसोसता हुआ दीर्घ निश्वास से मां ! मां ! पुकारता है पर कारखाने में तूती की आवाज को कौन सुनता है, वहाँ तो मां और बेटा सब एक घाट उतारे जाते हैं। थोड़ी ही देर में उस बछड़े के ऊपर सूँ सूँ करती हुई एक काँटेदार मशीन की कीलें आ ठहरती हैं जो शरीर के कितने ही स्थानों में मार्मिक वेदना पहुंचाती हुई चुभ जाती हैं। इस प्रकार मशीन के फिट हो जाने पर पहिया घुमा दिया जाता है। पहिया घूमते ही मशीन तुरन्त मूँगफली का छिलका उतारने की तरह बछड़े की खाल को उधेड़ ले जाती है, अस्थि पञ्जर वहीं पर दो तीन घण्टे तक जीवित छटपटाता हुआ खड़ा रहता है। अवकाश पाने पर कसाई आता है और माँस के टुकड़े बना लेता है।

ऊपर गोवध सम्वन्धी १२ निर्दयताओं का वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त और भी क्रूरतम पद्धतियाँ हैं जिन्हें लिखने में लेखनी लजाती है पाठक इतने से ही समझ लें। लिखा थोड़ा जानना बहुत।

अब आइये और सुनिये इस निर्मम हत्या के परिणाम स्वरूप प्राप्त हुई वस्तुओं का क्या उपयोग किया जाता है :—

(१) रक्त औटा कर चूर्ण बनाया जाता है जिससे पक्का 'लाल रङ्ग' बनता है, कपड़े आदि की रंगाई होती है। चाय के पेड़ों में इसी चूर्ण की खाद दी जाती है तथा दवाइयाँ भी बनायी जाती हैं।

(२) यदि ताजा माँस बिकने से बच जाता है तो उसके लम्बे लम्बे टुकड़े काट कर सुखा लेते हैं और लकड़ियों की तरह गट्ठे बाँध कर विदेशों में विक्रय के लिये भेज देते हैं।

(३) गर्भस्थ भ्रूणों के चमड़े से कोट, स्वेटर आदि बनते हैं। काफ-लेदर से बूट, चप्पल, बैग, टोपी, पेटी, थैले आदि चीजें बनती हैं। बाजों तथा कारखाने की मशीनों में चमड़े का व्यवहार होता है।

(४) चर्बी से कपड़े पर माँड़ी दी जाती है। मोमबत्ती, साबुन, वैसलीन, ग्लिसरीन, चेचक के टीके आदि बनते हैं। पनीर और पेपसिन दवा बनती है।

(शेष पृष्ठ १६ पर)

लेख ※ गोस्वामी रामगोपाल

भक्ति

भक्ति में किसी ऐसे सान्निध्य की प्रवृत्ति होती है जिसके द्वारा हमारी महत्व के अनुकूल गति का प्रसार और प्रतिकूल गति का संकोच होता है। इसी प्रकार हम भगवान की भक्ति प्राप्त करते हैं। जब समाज में अत्याचार, धर्म का लोप, अधर्म का प्रसार होता है तभी उस परमात्मा के अवतार की आवश्यकता समझनी चाहिए। जैसा श्री कृष्ण ने कहा है :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् !

मनुष्य उस परमात्मा के विश्व विधान का एक शुद्ध चेतन अंश है। वह सर्व गुण सम्पन्न है, हमारी आत्मा से ही उसका सम्बन्ध है। यह हमारा शरीर एक रथ के समान है जिसमें इन्द्रिय रूपी घोड़े जुते हुए हैं यह बुद्धि रूपी सारथी द्वारा सञ्चालित किया जाता है उस रथ के बीच में रथ का मालिक आत्मा विरा मान है। इन्द्रियां विषयों की आर दौड़ती हैं जिनको बुद्धि रोकती है। उसी आत्मा का मिलन अन्त में सर्वात्मा से होता है। विश्व विधान जिसकी नित्य क्रिया है, अत: स्थिति रक्षा-विधान की जो जो बातें अपने में हैं उनका अभाव उससे अंशी या सर्व में मानते नहीं बनता। दान, दाक्षिण्य, प्रेम, क्रोध आदि अपनी अंशात्मा देखते हुए सर्वात्मा में उनके अभाव की धारणा मनुष्य भला किस प्रकार कर सकता है ? जिस रूप में मनुष्य जाति उसकी कल्पना करता है वह उसी रूप में दृष्टिगोचर होता है। हम उसे धर्ममय, दयामय, प्रेममय मानेंगे और यह प्रेम उसी रूप का होगा जिस रूप में उसका व्यवहार मनुष्य जाति में दिखाई पड़ता है।

संसार में तटस्थ रहकर लोक व्यवहार सम्बन्धी उपदेश देने वालों का उतना महत्व हिन्दू वर्ण से नहीं है। संसार के आन्तरिक व्यवहारों के बीच सात्विक विभूति की ज्योति जगाने वालों का है। हमारे यहाँ उपदेशक ईश्वर के अवतार नहीं माने गये हैं, कर्म सौन्दर्य संघटित करने वाले हो

अवतार माने गये हैं। कर्म-सौन्दर्य के योग से उनके स्वरूप में इतनी माधुर्यता आ गई है कि हमारा हृदय आप ही आप उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। जो उनके स्वरूप पर मोहित न हो वह निस्सन्देह जड़ है। भक्ति से ही चाहे पुरुष हो या ईश्वर उसकी प्राप्ति होती है। आज का युग भी अभिस्तुति का है। भक्त भी भगवान की भक्ति कर उस तक पहुँच जाता है।

भक्त का भगवान सर्व शक्तिशाली है, वह अपरा परा से परे, यौवन जरा से परे, दूर से भी दूर है, अजन्मा होते हुए भी जन्म ले सकता है, निस्संग होते हुए भी प्रेम कर सकता है, सर्वव्यापक होते हुए भी वह भक्त के लिये एक देशीय बनकर लीला कर सकता है; भक्त के हित के लिये वह क्या नहीं कर सकता ? और क्या नहीं करता है ? ऐसा होने के कारण ही भक्त भगवान के अधिक से अधिक निकट पहुँचने के लिये उद्योग करता रहता है। प्रेम के अतिरिक्त और कोई दूसरा नाता नहीं। भक्ति चाहे निर्गुण की हो, चाहे सगुण की व्यक्तिगत प्रेम की भावना सब में समान रूप से पाई जाती है। जहाँ सर्वभावेन आत्मसमर्पण है, वहाँ फल की क्या चिन्ता ? वैकुण्ठ के सुख अथवा मुक्ति का आनन्द उस भक्त के लिये तुच्छ है जिसे अपने इष्ट देव की भक्ति प्राप्त हो गई है। वास्तव में भक्ति का प्राप्त करना ही भक्त के जीवन का चरम लक्ष्य है। यदि भक्ति प्राप्त हो गयी तो उसका जीवन सफल है, उसे सब कुछ प्राप्त हो गया। सभी भक्तों ने चाहे वे किसी सम्प्रदाय के हों अपने इष्ट देव से यही एक याचना की है :—

सूरदास जी कहते हैं :

अपनी भक्ति देहु भगवान्।

तुलसीदास जी ने भी सदैव भगवान की भक्ति की ही याचना की है—

सिव सिव होइ प्रसन्न करु दाया।

करुनामय उदार कीरति बलि जाऊँ हरहु निज माया।।

तुलसीदास अगर अपने 'राम' से कोई वरदान चाहते हैं तो केवल भक्ति का—

सकल कामना देत नाम तेरो काम तरु

सुमिरत होत कलिमल छल-छीनता।

करुना निधान । वरदान तुलसी चहत,

सीतापति भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता ।

मीरा भी कहती हैं :—

"मेरो मन रामहिं राम रटै रे ।"

प्राचीन समय में भक्ति का इतना प्राबल्य था और उनकी नस-नस में भक्ति कूट कूट कर भरी थी, किन्तु आज का मानव पश्चिमी सभ्यता के रँग पर रँग कर उस गीदड़ के समान हो गया है जो भक्ति को केवल पाखंड और मिथ्या समझता है, वह यही चाहता है कि मेरा आधिपत्य रहे और मेरी तरह यह भी रँग जाय और मेरी सत्ता को ही मानें । न जाने कब वह समय आयेगा जब कोई उसके रङ्ग को दूर कर उसकी वास्तविकता का आभास उसे दिखलायेगा ।

(पृष्ठ १३ का शेष)

(५) हड्डियों के चूरे की उत्तम खाद बनती है । हड्डियों के कोयले से ही चीनी साफ की जाती है ।

(६) खुर और सींगों से सरेस निकाला जाता है । कंघे, बटन, छड़ी, प्याले चाकू तथा छातों की मूठें बनती हैं ।

सूचना :—क्या आपने उक्त लेख पढ़ लिया ? यदि हाँ तो आप अपना कर्त्तव्य स्वयमेव निर्द्धारित करेंगे, परन्तु इतनी प्रार्थना मेरी मानिये कि इसे अपने पास मत रखिये किसी ऐसे व्यक्ति को दे दीजिये, जो इसे पढ़ सके और समझ सके ।

गो रक्षा के दस साधन

१. बूचड़ खानों को हर तरह के उचित उपाय करके बन्द करवाना चाहिये ।
२. गौओं की उत्तम वंश-वृद्धि के उपाय करने चाहिये ।
३. गौओं के लिये पर्याप्त चारे-दाने की व्यवस्था होनी चाहिये ।
४. घास के लहलहाते मैदान गौओं के लिये सर्वत्र खुले होने चाहिये ।
५. प्रत्येक सद्गृहस्थ को अपने घर में गौ अवश्य रखनी चाहिये ।
६. कोई भी हानिकारक वस्तु गौओं को कभी नहीं खिलानी चाहिये ।
७. बैलों के काम और चारे पर विशेष ध्यान रखना चाहिये ।
८. गौओं की तन्दुरुस्ती और स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिये ।
९. उत्सवों पर गौओं का विशेष पूजन होना चाहिये ।
१०. गो-जाति के लिये हृदय में अगाध प्रेम होना चाहिये ।

भक्त भारत

लेख * कुमारी शकुन्तला शर्मा

भक्ति और नारी

सर्व सम्पद, पूर्ण आनन्द दायक, आकर्षण सत्ता युक्त, परम तत्व परम पुरुष और सृष्टि के आत्म तत्व का नाम है श्री कृष्ण। श्रीकृष्ण का परमत्व प्रमाणित करने की आवश्यकता यहां नहीं जान पड़ती क्योंकि प्राचीन काल की बहुदेवोपासना फिर पञ्चदेवोपासना तदुपरान्त नारायण की उपासना से यह सिद्ध हो चुका है कि चिद्घन स्वरूप कृष्ण परम तत्व है। इसी परम तत्व की ओर जो चित्कण स्वरूप जीव समुदाय की आकर्षण क्रिया है उसी का नाम है भक्ति। वास्तव में तो भक्ति के, शृङ्गार के, लिए ही और जीव की भाव प्रवणता को बह कर बिखर जाने से बचाने के लिए ही एवं अखिल रसामृत सिन्धु में निमज्जित कर देने के लिए ही, ब्रह्म की श्री कृष्ण रूप में अवतारणा हुई। जगद्गुरू शङ्कराचार्य जिनकी साधना वेदान्त की कठोर भूमि पर ही विकसित हुई यह नहीं समझ सके कि 'कोटि मनोज लजावन हारे और वांछित फल देने वाले, दया के सागर श्री कृष्ण भगवान् की मोहिनी मूर्ति के रहते हुए मनुष्य क्यों इधर उधर आंख भटकाया करता है।

कन्दर्प कोटि सुभगंवाञ्छित फलदं दयार्णव कृष्णम्।
त्यक्त्वा कमन्यविषयं नेत्रयुगं द्रष्टुमुत्सहते॥

उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि भगवान श्री कृष्ण न तो एक देशीय हैं। और न विष्णु के अंशावतार ही हैं। बल्कि वे सर्वान्तर्यामी और सब अवतारों के प्रवर्तक साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं।

यद्यपि साकारोऽयं तथैक देशी विभाति यदुनाथः।
सर्वगतः सर्वात्मा तथाप्ययं सच्चिदानन्दः।

उसकी नीलिमा अद्भुत है। चिन्मयी है वह विधि हरि हर तीनों से पृथक है श्रेष्ठ है। 'कृष्णौ वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयी नीलिमा'

इसी अद्भुत नीलिमामय के प्रति भक्ति, जीव मात्र का नित्य सिद्ध और स्वरूपगत धर्म है। तथापि जीव की जड़ बद्ध दशा में इसका विशेष परिचय मनुष्य शरीर में ही अधिक प्राप्त होता है। संसार में क्या सभ्य, क्या असभ्य क्या आस्तिक, क्या नास्तिक, क्या पण्डित, क्या मूर्ख कोई भी ऐसा नहीं है जो श्री कृष्ण-भक्ति से शून्य हो। जिस प्रकार शरीर की स्थिति के लिए प्रकाश, जल, वायु, भोजन, शयन आदि सभी की आवश्यकता है। उसी प्रकार आत्मा की तृप्ति के निमित्त भक्ति की। यहां कृष्ण' शब्द अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'कर्षति सर्वान् यः अथवा कृष्येत स्वयमेव सर्वे जीवाः यं सः कृष्णः' जो सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है अर्थात् जिसकी ओर स्वयं जीव खिचा चला आता है वही है श्री 'कृष्ण'। इस जड़ जगत में चर अचर क्षुद्र महत् जो कुछ भी है सब आकर्षण सूत्र में आबद्ध है। एक क्षुद्र परिमाणु से लेकर विशाल भू-पिण्ड, विराट नीलाकाश, अनन्त नक्षत्र राशि सभी सूर्य मण्डल के आश्रित हैं। यह सूर्य पिण्ड अपने महत् के आश्रित है। अन्त में एक विराट तत्व है जो सबका मूल आश्रय है। एवं जो स्वयं किसी के आश्रित नहीं है। सब उसी के आकर्षण से स्थित हैं। जो किसी से कुछ लेता नहीं सबको देता ही है जो स्वयं किसी से नहीं खिचता पर खींच सबका लेता है। किन्तु चित्ततत्व की ओर आकर्षित जीव जब प्रेम मय हो उठता है, अपने उपास्य देव के प्रति अक्षुण्ण तन्मयता से भर उठता है। तब सभी क्रम उलट जाता है। सर्वतः पूर्ण, नवनीत की लालच के कारण ताड़ना पाता है। ऊखल से बँध जाता है गोपाङ्गनाओं की दया का आश्रित होकर साक्षात् करुणेश करुणोत्पादन के लिए बिलख बिलख कर रोता है। अपना परमत्व विस्मृत कर श्यामल कपालों से 'मोतिन का मनियाँ' ढुलकाता हुआ उत्सङ्ग में छिप जाने के लिए मचल उठता है। जो 'बिनु पग चलई सुनई बिनु काना' है। उसे 'माता सुत को चलन सिखावति' और भी अँगुरी गहि गहि दोउ जनियां' उसे चलना सिखा रहीं हैं। उसे 'अहीर की छोह-रियाँ छछिया भरि छांछ पै नाच' नचा लेती है। राधा उसके कन्धों पर चढ़ कर प्रणयाभिमान से उत्फुल्ल तक हो जाती है। विदुरानी उसे केले के छिलके खिला लेती है। सर्व शक्तिमान होने पर भी उसका शस्त्र न ग्रहण करने का प्रण छुड़वा देते हैं। यही है वह आकर्षण जिसके परिणाम का नाम है आनन्द। जहां सुख है वहीं आकर्षण है। जहां आनन्द है वहीं प्रेम है यह सुख और आनन्द ही श्री कृष्ण है और आकर्षण या प्रेम ही भक्ति है।

ज्ञानी अपने ब्रह्म स्वरूप का चिन्तन करके तटस्थ हो जाता है।

किन्तु भावुक भक्त अपने सम्पूर्ण हृदय, प्राण, बुद्धि, कल्पना सभी वृत्तियों को समाहित कर अपनी व्यक्तिगत सत्ता का ही लोप कर देता है। ज्ञानी ब्रह्म के विराट प्रकाश के सन्मुख नतमस्तक होकर मूक हो जाता है। भक्त अपने प्रियतम आराध्य के चरणों में लिपट कर रोता है। गाता है। नाचता है। और पागल हो जाता है। वह उसे कुछ देकर भागना चाहते हैं पर प्रिय को ही लेने वाला व्रती और कुछ लेकर हो उन्हें बांधे रहता है। उल्टे उन्हें ही दे डालता है अपना सारा अहमत्व ! अपना इकाई !! अपना सर्वस्व!!! तभी भगवान स्वय कहत हैं।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

[भागवत ११।१४।२०]

हे उद्धव मुझ में बढ़ी हुई भक्ति जिस प्रकार मुझे वश में कर सकती है। उस प्रकार न योग न ज्ञान। न वेदाध्ययन। न तप न त्याग। कारण है इस मार्ग की सरलता। जैसे राजमार्ग पर आँखें मूँदे हुए भी, व्यक्ति को दौड़ते रहने में गिरने का भय नहीं रहता। उसी प्रकार इस मार्ग में श्रुति स्मृति प्रतिपादित धर्म साधन में त्रुटि हो जाने पर भी पथ भ्रष्ट होने का भय नहीं रहता।

यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ।
धावन्निमील्य वर नेत्रे न स्खलेन पतेदिह ॥

[भागवत ११-२।३४।३५]

भक्ति के साधन साध्य का निरूपण मुझे इष्ट नहीं है। कहना केवल यह है कि 'अति सूधो सनेह को मारग है जहं नैकु सयानप बाँक नहीं' यहां न कहीं चतुराई की आवश्यकता है न समझ की, न पाखण्ड की आवश्यकता है न दिखावे की। बस इष्ट है केवल प्रेम अनुराग अनन्यता सरलता और—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योग सिद्धीरपुनर्भवं वा मर्य्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत ॥

[भागवत ११।१४।१४]

जिसने मुझ में मन अर्पण कर दिया है, वह मेरा अनन्य भक्त मुझे छोड़ कर ब्रह्मा जी का पद इन्द्र का आसन, चक्रवर्ती साम्राज्य लोकाधिपत्य योगजनित सिद्धियां ही नहीं किन्तु मोक्ष पद की भी इच्छा नहीं करता।

कानन दूसरो नाम सुनै नहिं एकहि रंग रंगो यह डोरी।

धोखे हु दूसरो नाम कढ़ै रसना मुख बाँधि हलाहल बोरों।

श्रवण और रसना को तो दण्ड दिया किन्तु—

बावरि वे अखियां जरि जांय जो सांवरो छाड़ि निहारत गोरो

की मान्यता ही भक्त का परम मन्त्र है।

भक्ति की इन मान्यताओं एवं कृष्ण के इस विराटत्व का उल्लेख यही स्पष्ट करता है कि यह अतिशय सरल मार्ग जो परमतत्व का माधुर्यमय सामीप्य लाभ कराता है। जहां रूप शील सौन्दर्य और शक्ति एकीभूत होकर मानव मन की सभी वृत्तियों का रमाकर भटकने नहीं देते वह अवश्य ही वरेण्य है। और प्रमुखतः उन लोंगों द्वारा सहज रूप से सरल है। जिस योगीश्वर को वेदों ने खोजा और पाया नहीं पुराणों ने गाया और थक गए वही कहीं कुञ्ज में 'बैठो पलोटत राधिका पायन'। कैसी अपूर्वता है। जिसे पाने के प्रयत्न में सूर्य शशि अनवरत भ्रमित हो रहे हैं। वह अपनी भक्ति के चरणों में स्वयं झुका बैठा है। राधा के चरणाम्बुजों में नत है। वही राधा जो स्त्री का, शक्ति का और आराधना का प्रतिनिधित्व कर रही है।

नारी की भक्ति को ओर ही प्रवृत्त करने वाला एवं साधन पथ के अयोग्य करने वाला शास्त्र निश्चय ही नारी की शक्ति की अवहेलना नहीं करता। वेद पुरुष की अपेक्षा स्त्री की उत्कृष्टता ही घोषित करते हैं।

उतत्वा शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी। अदेवत्रादराधसः।

[ऋग्वेद ५।५।६१।६]

(उत) यह प्रसिद्ध है कि अदेवत्रात् देवार्चन हीन और (अराधसः) ईश्वराराधन न करने वाले पुरुष से स्त्री (शशीयसी) प्रशस्तर और वस्यसी अधिक धर्म निष्ठ होती है।

दूसरे 'न लिङ्ग धर्म कारणम्' भी यही प्रतिपादित करता है कि धर्म के विषय में नारी अयोग्य नहीं है। किन्तु अयोग्य कहने वाले धर्मशास्त्र के मन में यह बात अवश्य रही होगी कि नारी सहज भक्तिमयी है। उसका जीवन जन्म से ले कर मरण तक अनुराग, सदाचार, अनन्यता सरलता और मधुरता का इतिहास है। अपने लिये नहीं दूसरों के लिए। अस्तु उसे भक्ति करने के लिए प्रयत्न नहीं करना होगा। साधना नहीं करनी होगी। अपने आपको बदलना नहीं होगा। केवल दृढ़ता का संचय करना होगा। पुष्टि सम्प्रदाय के बालकृष्ण की सेवा एक ममतामयी माँ की दिनचर्या से अधिक

कुछ नहीं। मीरा की प्रेम साधना एक पतिपरायणा साध्वी की सच्ची लगन और अनन्यता से कुछ भी अधिक नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम सेवा, निश्छलता, अनन्यता स्त्री के सहज गुण हैं। इन्हीं गुणों को उदीप्त कर के आकर्षणमय के श्री विग्रह में लीन हो सकती है। पुरुषों में यह गुण नहीं हैं ऐसा तो नहीं किन्तु स्त्रियों में इनका प्राबल्य है यह मानना ही पड़ेगा। और इसीलिए यदि भक्ति पंथ में पुरुष को शान्ति पाने के लिए दो जन्म 'रगर' करनी पड़ेगी तो स्त्री की एक ही जन्म में वह पूर्णता प्राप्त हो जायगी। इन्हीं गुणों को लेकर वह पुरुष से जीती भी है और हारी भी है।

भारतीय नारी तो सहज धर्मनियाँ हैं यह अभी तक निर्विवाद सत्य बना रहा है। यहां तक कि भारत के धर्मनिष्ठ बने रहने का अथवा रसातल को न पहुँच जाने का कारण भी नारी की भक्ति में अवश्य ही उसकी सरलता छिपी है जिसे 'मतिमन्द गवांरी' आदि भी कह दिया गया है। किन्तु यही मति की मन्दता ही भक्ति का चरम साध्य है। वहां 'सयानप' की गुञ्जाइश नहीं। भक्त को अहमत्व भूलने का अभ्यास करना होता है। तब लीलामय स्वयं आकर, उसे अपनी लीला से विमुग्ध कर, सब कुछ भुला देते हैं। भक्त का ज्ञान मय हृदय भी मधुरता से आप्लावित होकर नेम धर्म को त्याग कर उन श्री चरणों का अनुरागी मात्र रह जाता है।

दूसरे पञ्चधा भक्ति में अधिक महत्व भी मधुरा भक्ति को ही दिया गया है कारण है उसकी रसज्ञता तथा शेष चारों का इसमें अन्तर्भाव। इस दृष्टि से भी मधुरोपासकों को अपने परम प्रियतम के मधुर सान्निध्य सुखोपभोग के लिए अपनी अनुरागिनी चित्तवृत्ति को स्त्री का ही बाना पहनना पड़ता है। कुँअरि राधिका की सेवा परिचर्या में रहने वाले राधावल्लभी सम्प्रदायानुयायी भक्त प्रवर अपने भौतिक कलेवर क सर्वथा विस्मृत कर, अन्तरङ्गा सहचरी बन कर ही, निकुञ्ज केलि का रसास्वादन करते हैं। पूर्व विवेचन के अनुसार भी शरीर प्रकृति है और आत्मा ब्रह्म। अपने परम पुरुष को पाने के लिए जीवात्मा ही नारी बन कर ही समर्पित होती है। क्योंकि यह अपूर्व आत्मार्पण, सम्पूर्ण आत्म समर्पण नारी भाव की ही शोभा है। और नारी में ही सम्भव भी है। इस दृष्टि से भी नारी हृदय के लिए भक्ति, जो उसके नारी सुलभ गुणों की सहायता से ही साधित हो कर चरमता प्राप्त करती है अधिक उपयोगी और अनुकूल सिद्ध हुई है।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो नारी के विकास का मूल उत्स ही भक्ति है। जिस प्राची ने सूक्ष्म तत्वों के विश्लेषण और आत्म-तत्व की

खोज में शरीर तत्व को नगण्य समझा उन्होंने भी नारी की भक्ति परायणता और अनन्यता की ही दुहाई दी है। प्राची ने शरीरिक सौन्दर्य के भीतर आध्यात्नवाद की झलक देखी।

पाश्चात्य साहित्य की सर्वोत्कृष्ट नायिका हेलेन शारीरिक सौन्दर्य की प्रतीक है। किन्तु भारतीय साहित्य की सर्वोत्कृष्ट नायिका सीता का सौन्दर्य उसकी दिव्यात्मा का प्रतिबिंब मात्र है। हेलेन भोग्या के रूप में आती है। सीता परम पूज्या के रूप में। कर्तव्य परायणा एक निष्ठा सीता भक्ति की साकार प्रतिमा हैं। पश्चिम की भोग्या के जीवन में हाहाकार और विलासिता की लपट है प्राची की पूज्या के जीवन में त्याग और पवित्रता की सुषमा है। भक्ति की मोहकता है।

भारत की वरेण्य महिलाओं के चरित्र का उल्लेख स्थान सङ्कोच के कारण उपयुक्त नहीं। किन्तु सती, सीता, अनसूया, सावित्री, द्रोपदी, अहिल्या शतरूपा, कौशिल्या, यशोदा, अगणित देवियां भक्ति की ही प्रतीक हैं। वह भक्ति जिसका मूल है अनुराग। विदुषी और अविदुषी सभी महिलाएं भक्ति का ही प्रतिनिधित्व कर रहीं हैं। गार्गी से लेकर गणिका तक मैत्रेयी से लेकर शवरी तक सभी इसका प्रमाण हैं।

यशोदा के भाग्य की सराहना नहीं हो सकती। त्रिभुवनपति को घुटुरुवन रेंगते, और माँ के उतसङ्ग चढ़ने को लालायित देख कर महर्षि नारद भी विभोर हो जाते हैं।

किं ब्रूमस्त्वां यशोदे कति-कति सुकृत क्षेत्र वृन्दानि पूर्वं
गत्वा कीदृगविधानैः, कति-कति सुकृतान्यर्जितानित्वयै।

यशोदे! तुम्हारे भाग्य के विषय में क्या कहा जाय। जाने कितने पूर्व सुकृत किए हैं तुमने, जाने कितने पुण्य क्षेत्रों का भ्रमण किया है जाने कितने पूजा पाठ और सद्कार्यों का यह फल प्रतिफलित हुआ है।

ब्रज-गोपिकाओं के भाग्य की तो चर्चा ही क्या। ऋषि, मुनि, नाग, किन्नर, देव, गन्धर्व स्वयं ब्रह्मा और शिव जिस सुख के लिए तरसते रहते हैं, जिस प्रेम का उदाहरण पाकर भक्ति का पथ कृतार्थ हो गया—'यथा ब्रज गोपिकानां'। उन दीन अज्ञानी गोपबालाओं के पुण्य प्रताप की तुलना ही कहाँ हो सकती है। 'उन्हें तो प्रभु का अलभ्य वरदान ही प्राप्त हो गया।

रास के समय अनन्त रूप रत्नाकर की भुजाओं का अवलम्बन प्राप्त हुआ, उसके हृदय की समस्त इच्छाऐं पूर्ण हो गयीं। परम प्रिय प्रियतम के

भुजपाश से आलिङ्गित होकर ब्रजदेवियां तो स्वयं पूर्ण हो गईं यह वह सौभाग्य था। जिसे निरन्तर हृदय में वास करने वाली लक्ष्मी भी न प्राप्त कर सकीं। न स्वर्ग की सुन्दरियाँ ही प्राप्त कर सकीं जो कमल पुष्पों की सुगन्ध और कमनीयता से आप्लुत थीं।

नायं श्रियोऽङ्ग उनितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्ध रुचां कुतोऽन्याः
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड गृहीत कण्ठ–
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम् ॥

[भागवत १०]

काग जैसे अति निम्न पक्षी के भाग्य तक मनमोहन के हाथ से रोटी छीन ले जाने पर महत हो जाते हैं जिसे उस वहत्तर का ज्ञान तक नहीं रहता। फिर उन ब्रज-गोपिकाओं का क्या कहना जिन्हें उन नाल-सरोरुह-श्याम भुज लताओं पर सिर रख कर विश्राम करने तक का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। उद्धव जैसे ज्ञान योगी भी उनकी भक्ति-गरिमा देख कर मूक हो गए।

ऐसा ही है इस भक्ति का प्रभाव। नारी की आंगिक कोमलता के सर्वथा उपयुक्त मृदुलतम प्रकृति के अनुरूप और नारी की मान्यता एवं अनुरागमयी प्रतिष्ठा के सर्वथा समीप। अपना सर्वस्व पति के पुनीत तम चरणों में उत्सर्ग करके जैसे नारी केवल उसी को अपना सर्वस्व जान कर आत्म समर्पण कर देती है उसी प्रकार भक्त भी अपने परमपति के चरणों में सर्वस्व समर्पित कर, जीवन और मरण को विस्मृत किए उसी के अनुध्यान और अनुचिन्तन में लीन रहता है। यह भाव भक्त साधना से पाता है। नारी में स्वतः उद्भूत होता है।

नारी का विमल प्रेम काम गन्ध से सर्वथा शून्य है। कृष्ण ऐसे ही प्रेम के लिप्सु हैं।

भले ही शास्त्र स्त्रियों में काम की मात्रा अधिक कहें किन्तु उसके शमन और दमन की शक्ति भी केवल उन्हीं के पास है। भुक्ति-मुक्ति स्पृहा का नाम ही तो काम है। भारत की पति परायणा सभी कुछ तो पति के चरणों में समर्पित कर देती हैं। कहाँ भुक्ति और मुक्ति की स्पृहा। और कहाँ सती का निश्छल प्रेम।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा मद्दर्शनान्यर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो, मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥

'वह लम्पट चाहे मुझ चरणदासी को आलिंगन करे, चाहे पैरों से कुचले और चाहे दर्शन न देकर मेरे मन को दुःख दे—जो चाहे सो करे—किन्तु मेरा तो प्राणनाथ उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है'।

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा स्थापित प्रेम निष्ठा की पराकाष्ठा अथवा उसका विशुद्ध स्वरूप प्रदर्शन भारतीय नारी की पति भावना के कितना निकट पहुंच रहा है यह प्रस्तुत श्लोक से स्पष्ट हो गया।

अन्त में कहना यही है कि नारी की आँगिक कोमलता, भाव प्रवणता, सहज अनुरागमयी प्रवीणता और अनन्यता को देखते हुए भक्ति ही उसके लिए सर्व श्रेष्ठ योग है। यही उसका विकास है और यही है उसका चरम साध्य। उसमें उक्त भक्ति के गुण सहज रूप से जन्म लेते हैं पुष्ट होते हैं उन्हें आवश्यकता होती है केवल जागरूक रखने की तथा सुपथ की ओर उन्मुख करने की।

भले ही आज वे कीटाणु उसमें मृतप्राय हो रहे हों किन्तु यदि, हृदयतः भक्तिमयी नारी, उन्हें शरीरतः भक्तिमयी होकर भगवत् अनुराग की पुनीत वारि-धारा सिक्त कर दे तो वह कीटाणु क्षण भर में जी लें। और तब वह अपने देव दुर्लभ तन का ही उद्धार न कर लेगी वरन् समग्र विश्व का पहलू बदल देगी तभी होगा इस तमाच्छादित भारत में सच्ची संस्कृति का नवीन अरुणोदय!

निराश न होकर प्रभु-कृपापर विश्वास करो

भय, व्याकुलता, क्रोध, निराशा, चिन्ता को दो पूरा त्याग।
छोड़ो मोह, विषाद, बुझा दो वैर-द्वेष की भीषण आग॥
आशा, धैर्य शान्ति, साहस हो पूर्ण भरा मन में उल्लास।
निश्चय हो साफल्य-सिद्धिका, रहे पूर्ण प्रभु पर विश्वास॥
सदा रहो प्रभु के शरणागत, प्रभु के लिये करो सब काम।
रहो अचल सत्पथ पर, लेते रहो सदा श्रीहरि का नाम॥
प्रभु-आश्रय के साथ रहेगा जहां नित्य सत्कर्मोत्साह।
विजय, विभूति, कीर्ति, श्री, निश्चित रहेंगी वहां अथाह॥

लेख * चतुर्भुजदास रावत चतुर्वेदी

भक्त और भगवान

भारतवर्ष सनातन से भक्ति प्रधान देश रहा है, यही कारण है कि इस पवित्र भूमि पर समय समय पर भगवान का अवतार होता रहा है और भक्तों का प्रादुर्भाव।

भक्त-भारत अपनी इस अनुपम देन के लिये जगत्गुरू माना गया। भक्त से भगवान और भगवान से भक्त इन दोनों का आपस में प्रवल सम्बन्ध है और जो अछेद तथा अभेद हैं। ऐसे भक्त समय समय पर अपनी भक्ति भावना का परिचय समय समय पर देते रहे हैं जिससे भारत की जनता का आध्यात्मिक लाभ होता रहा है। भक्त जब भगवान की भक्ति में सरावार हो जाता है तब उसके मुख से निकल पड़ता है—

मेरा मुझ को कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपता क्या लागे है मोर॥

समर्पण योग का यह ज्वलन्त उदाहरण है जिसे समस्त सन्तों ने अपनाया है यह अपरिमित सुख प्राप्ति की एक महान कुञ्जी है। विश्वास के साथ किया हुआ प्रभु का चिन्तवन परम कल्याणकारी और हितकर है। श्री गोस्वामी हित हरिवंश जी की सम्प्रदाय के सन्तों ने कहा है—

काहू लियौ जप काहू लियौ तप,
काहू महाव्रत साधि लियौ है।
काहू लियौ गुन काहू लियौ धन
काहू महा उन्माद दियौ है।
रंचक चारु चकोरिन दम्पति
सम्पति, प्रेम-पियूष पियौ है।
राधिकावल्लभ लाल के थार कौ
श्री हरिवंश प्रसाद लियौ है।

उक्त सन्त श्री राधिकाजी के परम भक्त थे और गौड़ रूप से भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी के। आपकी लिखी पुस्तक में श्रीजी के उपर लिखे छन्द हैं।

भक्त साधना के लिये आपने एक अपूर्व उपदेश दिया है जो सर्व साधारण के मनन करने योग्य है यथा:—

तनहिं राख सत्सङ्ग में, मनहि प्रेम रसमेव।
सुख चाहत 'हरिवंश'-हित, कृष्ण कल्पतरु सेव ॥

अर्थात् शरीर को सत्सङ्ग का अङ्ग बनाकर और मन में प्रेम रस को घोलकर आनन्द कन्द ब्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र रूपी कल्पतरु का सेवन करना चाहिये।

जो भक्त अपनी भावनाओं को इस प्रकार बना कर प्रभु चिन्तन में अपना मन और तन लगाता है वही प्रभु के समीप सदैव रहता है अत: जीवन का सार यदि है तो "राधाकृष्ण रस पीना चाहिये" भक्त सूरदासजी ने भी यही उपदेश दिया है—

भज मन नन्द-नन्दन चरन।

हे मनमोहन ! टेक निभा दो !

हे मनमोहन ! टेक निभा दो ॥
दुख-सुख का सब रोना रोकर, व्याकुलता के पथ पर चलकर।
जीवन की सुस्मृतियाँ भूला क्षण भर कोलाहल में फँसकर ॥
क्रीडा-कौतुक जग के देखे, नीरवता से इन में पड़कर।
मृग-मरीचिका मन उलझाया, स्वर्ग-नरक का ध्यान न धरकर ॥
जीवन सुखी बना दो। हे मनमोहन ! टेक निभा दो ॥
टूट चुकी अब तो अपनी यह, प्रिय-जीवन की मधुमय प्याली।
भावों का उच्छ्वास नहीं है, मन-मन्दिर है मेरा खाली ॥
सौरभमय शुभ-सुमन खिला दो लेकर अभिलाषा की डाली।
जीवन-भार झुका दो अपना, जीवन-उपवन के वनमाली ॥
सुन्दर छटा दिखा दो। हे मनमोहन ! टेक निभा दो ॥
मुरझी लता कामनाओंकी लेकर आया द्वार तुम्हारे।
यद्यपि इस जीवन-भर में की कभी तुम्हारी याद न प्यारे ॥
पड़ी हुई मझधार नाव है, कोई नहीं जो पार उतारे।
'शरण' शान्तिमय अपनी देकर, भगवन् ! अब तो करो किनारे ॥
भव के फंद छुड़ा दो। हे मनमोहन ! टेक निभा दो ॥

❀ तिलक-भावना ❀

प्रथम तिलक जयदेव कों श्रीजमुना निज हाथ।
युगल पुंड कुंकुम रचित कूल भावना साथ ॥ १ ॥
दूजो मध्वाचार्य को श्याम रङ्ग श्री एक।
द्वैत तत्व कों संग ले सेवक भये अनेक ॥ २ ॥
तीजो श्री माधवपुरी केवल नासा बाच।
भाल रूप अनुपम ललित प्रिया भावना सींच ॥ ३ ॥
चौथो श्री अद्वैत प्रभु वट के पत्र समान।
भासा ऊपर धार के मस्तक कूल प्रधान ॥ २ ॥
पञ्चम नित्यानन्द प्रभु वंश पत्र के भाव।
श्री चैतन्य महाप्रभु करुणा बढौ प्रभाव ॥ ५ ॥
छठो भट्ट रघुनाथ कौ नूपुर सदृश बनाव।
सप्तम भट्ट गदाधरी बिन्दी श्याम सुभाव ॥ ६ ॥
वक्रेश्वर पण्डित कियो नासा पुट उल्लङ्ग।
मधु पण्डित बिन्दी दई वंशपत्र के सङ्ग ॥ ७ ॥
मोटी आकृति नूपुरी श्यामानन्द विराज।
व्यासदास बिन्दी दई राधा रस में साज ॥ ८ ॥
राधामाधव भावना निशिदिन रहत अभङ्ग।
रामराय आदर कियो सबको लखि हरि अङ्ग ॥ ९ ॥
भावावेश प्रधान रुचि तिलक चिह्न गोपाल।
आचारज रस पद्धति सब विधि सकल रसाल ॥१०॥
चारो हरि की सम्प्रदा सब में जिनको मान।
ऐसे श्री जयदेव जू गीतगोविन्द प्रधान ॥११।

लेख * मानस तत्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी

कवि सम्मेलन

जो त्रय लोकन मौलि किरीट जड़े जनु नीलमणी शुचि सोहै।
श्री मिथिलेश ललो मुख पङ्कज के शुचि भौंर रसारस मोहै।।
दैत्य-बधू दृग खञ्जन अञ्जन धोवन को कटु धूम बनो है।
सो रघुवंश कुमार धनुर्धर मो हिय मो हिय मोह रहो है।।
वासुदेव वृषभानुजा भानु प्रभा दोउ एक।
ललित रूप लाला-ललित-ललीकुमार विवेक।।

रसिक मनभावन सुहावन फाल्गुन के पावन पक्ष की आमलकी एकादशी के शुभ्र शशि प्रकाश में प्रेम सरोवर के सहेट-संकेत स्थल-में टहलते हुये रसिक राज आनन्दकन्द ब्रज चन्द श्री नन्दनन्दन जी की प्रतीक्षा करते करते रात्रि का डेढ़ प्रहर डेढ़ युग के समान लम्बा प्रतीत होने लगा और सहकार मञ्जरी की मादक सुगन्धि तो वियोग व्यथा की सहकारिणी बनकर श्याम सुन्दर के हृदय को अधिक मथने लगी, तो कटिफेंट में खुंसी मुरलिका को निकालकर उसकी ध्वनि को दूती बनाकर भेजना ही चाहते थे कि तभी अनति दूर अमराई में चन्द्रज्योत्स्ना को पराजित करने वाला सर्व गुणागरी नवनागरी गोलोक उजागरी श्रीवृषभानु किशोरी के अकलङ्क मुखमयंक से निकला हुआ प्रकाश पुञ्ज दिखाई दिया और साथ ही साथ श्रीजी के श्रीअंग से निकलने वाली दिव्यकञ्ज मकरन्द गन्ध ने तो आम्रमञ्जरी गन्ध को निच्यूत करके अलखित गति नट नागर को आनन्द सागर में निमग्न करके उन्हें चित्र-चित्रित-सा ही कर दिया। अति समीप आकर स्वामिनी जू की सखियों के झकझोरने पर जब होश में आये। तब परस्पर नर्म वाक्यों का आदान प्रदान हुआ। तत्पश्चात् शाब्दलमण्डित चन्द्रचन्द्रिका बिहण्डित दिव्य मही पर सखियों के बिछाये सुकोमल कौशेयास्तरण पर स्मर-पण्डिताके दक्ष भाग में सुदक्ष स्मरण पण्डित के बैठते ही उन्हें दण्डित करने के विचार से चारों ओर से घेरकर सखियां बैठ गईं। तब अवाग्वि-गलिता ललिता ने प्रस्ताव किया कि इस सुहावने समय में यदि किसी

एक समस्या पूर्ति रूप कवि सम्मेलन हो जाता तो अनायास ही यह एकादशी का रात्रि जागरण सम्पन्न हो जाता। सर्व सम्मति से प्रस्ताव के पास हो जाने पर श्री रङ्गदेवी सखी ने समस्या प्रस्तुत की कि—

"यदि नन्दलला तुम होते लली"

तब तो चारों ओर से और एक स्वर से ही—

"सवही कहा मन्त्र भल भाई।"

उस समस्या पूर्ति को तत्तत्प्रतिनिधि कवियों ने फूल फल समन्विता शाखा भाषा के सुललित छन्दों में सर्व दृगोचर कराने की कृपा किया है। उनमें से कुछ प्राप्य पद्य प्रस्तुत सङ्कलन में उपस्थित हैं।

श्रीजू ने मन्द स्मित पूर्वक आज्ञा किया कि सखि! ललिते! तुम्हारा प्रस्ताव है अतः सर्व प्रथम पूर्ति प्रारम्भ तुम से ही हो। जैसी आज्ञा, कहकर श्री ललिताजी ने अपने सुललित स्वर में सुनाया—

"यदि नन्द लला तुम होते लली"

१—मुख चन्द की कान्ति को कौन कहै जहँ पै अँटके मन मारन के।
अलवेली सी वोली में बातें करौ मृदु पुञ्ज बहे रस धारन के॥
धनु भौंहे, शरान कटाक्ष बड़े लखि धारि लजें तलवारन के।
यदि नन्दलला तुम होते लली तो गले कटि जाते हजारन के॥

श्री विशाखाजी—"यदि नन्दलला तुम होते लली"

२—रसि जाते किते रसिया रस में बस जाते किते घर जारन के।
फँसि जाते पथी लखि लोनी छटा गलियार'विहारी'बजारन के॥
परि जाते मजारन में कितने मुसुकान के मारे नजारन के।
यदि नन्दलला तुम होते लली तो गले कटि जाते हजारन के॥

[महाकवि "विहारी" बिजावर]

श्री चित्राजी—

३—काले घुँघुराले केश होते यदि वेणी वेश,
होते उरहार बनमाल चटकीली जो।
मोरपक्ष त्याग के जो होती माँग मोती भरी
श्याम अङ्ग पर लाल चूनरी रसीली जो॥
"शारद" जो उर पै उतङ्ग कुच होते चारु,
गति मदमाती बंक लंक लचकीली जो।
चल जाती लाखों के गले पै छुरी एक साथ,
होते नन्दलाल नन्द नन्दिनी छबीली जो॥

[कवि वर "शारद" श्रीअयोध्या जी]

श्री सुदेवी जी—"यदि नन्दलला तुम होते लली"

४—सुकुमारता देखि कुमारी लजैं छल छन्द सिखे चित चोरन के।
यमुना तट गोपिन रोकत हौ करि कौतुक भौंह मरोरन के॥
अति चञ्चल नैनन हेरि हँसौ बहु भाव करौ रस बोरन के।
यदि नन्दलला तुम होते लली तो गले कटि जाते करोरन के॥
[महाकवि "रसनिधि" दतिया]

श्री तुङ्गविद्या जी—"यदि नन्दलला तुम होते लली"

५—साँवरो अङ्ग बसो जग 'चङ्ग' अनङ्ग उमङ्ग है जोरन के।
गोल कपोल पै कुण्डल डोलत नैन नचैं जनु चारन के॥
बलिहारी मैं भौंह मरोरन के मुसुकाई ओठ सकोरन के।
यदि नन्दलला तुम होते लली तो गले कटिजाते करोरन के॥
[सुकवि "चङ्ग"]

श्री मञ्जरी जी ने प्रार्थना किया कि अब तो सजनी रजनी अपनी तृतीय पजनी की बजनी समाप्त करने वाली हैं अतः अब श्री प्रिया प्रियतम का कृपा प्रसाद मिलना चाहिये। सबकी प्रेम प्रार्थना सुनकर श्री कीर्ति किशोरीजी ने सुनाया—"यदि नन्दलला तुम होते लली"

६—बातें सिखे बहु घातें सिखे और सिखे छल छन्द छिछोरन के।
उरझी अलकैं मुख पै झलकैं चोरत चित्त चकोरन के॥
"बजरंग" प्रवीण सबै गुण में तन काम नगैं बहु जोरन के।
यदि नन्दलला तुम होते लली तो गले कटि जाते करोरन के॥
[सुकवि बजरंग]

अन्त में श्रीजी सहित सब के बहुत मनुहार करने पर परम रसिक शिरोमणि श्री ब्रजराजकुमार सरकार ने उसी तरह पालथी मारे सुखासन से वैठे बैठे ही आंख भौंह मटकाते हाथ नचा नचा कर भाव भंगिमा बताते हुये पद्य पढ़ना प्रारम्भ किया—

७—हम होते जो गोरी किशोरी सुनो बरजोरी गोपाल न लाती इतै।
बतराती तिन्हैं रसकी बतियां अनुराग भरी इठलाती इतै॥
'बजरंग' तुम्हारी सी ना करती व र मेलि गरे अरुझाती इतै।
मुसुकाइ चितै निशि सारी बिनै परयंक पै धूम मचाती इतै॥
[सुकवि बजरंग]

सबके एक और, एक और कहने पर आनन्द कन्द ने दूसरा पद्य पढ़ा—

८--हम होते जो नन्दलली ऐ अली तो तुम्हारी सी रार मचावती ना।
पहिले हँसाय छकाय प्रिये फिरि बाद हु में तरसावती ना॥
परयंक पै अङ्क मिलाकर के रस रङ्ग में अङ्ग हटावती ना।
तुम जानति आंखिन शील भरे हमरे मुख से नहीं ग्रावती ना॥

चोर जार शिखामणि के "नहीं आवती ना" कहते ही; रङ्ग भरी पिचकारी जो बगल में छिपाये लिए थीं--से सखियाँ उन्हें सराबोर करने लगीं। उस समय की उन रसिकराज की दशा का वर्णन एक भाव विभोर कवि के मुख से ही सुनने योग्य है—

९--फजीहत--रङ्ग पिचकारी औ अबीर के सुरङ्गन की
फीकी भई गत्ति मति शिशिर जुन्हैया की।
सराबोर श्याम को भयो है पीत पट बाँको
रँग गई फेंट हा हा खात बल भैया की॥
श्याम भये श्यामा अभिरामा गोप नन्दिनी सी
देन लागे सौंह बाबा यशुमति मैया की।
फौज ऋतुराज की फतह कुसुमायुध की
फाग राधिका की और फजीहत कन्हैया की॥

इस तरह श्यामसुन्दर को श्यामा सुन्दरी
"श्यामा षोडश वर्षीया" (अमरकोश)
बनाकर पूरी फजीहत करने के बाद--
नैन नचाइ कही मुसुकाइ लला फिरि खेलन आइयो होरी।
[महाकवि प्रभाकर]

कह कर वह काम अनी तो घनी अमराई में होती बनी २ घर गई। इधर ये अनोखे चोखे नीलमणि किस बानक से घर पहुँचे होंगे, उस छटा का तो ध्यान करने में भी कल्याण है।

ब्रज की होरी

रंग हो हो हो हो होरियाँ।

उत बने नवल किशोर रसिक वर, इत बनी नवल किशोरियाँ ।।
वे नव नील स्याम घन सुंदर ये कंचन तन गोरियाँ।
इनकें अरुन बसन तन राजत, उनकें पीत पटोरियाँ ।।
एकनि कर गेंदुक नवलासो अरु फूलन भरि झोरियाँ।
भाजत राजत भरत परस्पर परिरंभन झक झोरियाँ ।।
राखी करन दुराइ सबनि मिलि केशरि भरी कटोरियाँ।
छल बल सों दुरि मुरि लपटावति चंदन बंदन भरोरियाँ ।।
बाजत ताल मृदंग मुरज ढफ मधुर मुरली धुनि थोरियाँ।
नाचत गावत करत कुलाहल परम चतुर अरु भोरियाँ ।।
फेंटनि भरें गुलाल विविध रंग अरगजा भरी कमोरियाँ।
सनमुख दृष्टि बचाइ धाइ करि स्याम सीस पर ढोरियाँ ।।
याही रस निवहो निसि वासर बंधे प्रेम की डोरियाँ।
माधुरी के मन सुख के कारन प्रगटी भूतल जोरियाँ ।।

—श्री माधुरीदास जी

तुम चलो सबै मिलि जांय खेलन होरियाँ।

अपनी अपनी सुरंग चूनरी मोतिन मांग भरोरियां ।।
थरहरात अधरन पर मोती अंगिया केशर बोरियां।
चोवा चंदन अगर कुंकुमा भरि भरि देत कमोरियां ।।
अंग सों अंग गुलाल विराजत भली बनी यह जोरियां।
केहरि लंक नितंब बिराजत गज गति चाल चलोरियां ।।
पिचकारी मोहन पर डारत विहँसी घूंघट खोलियाँ।
बाजत ताल मृदंग और ढफ पढ़ि पढ़ि बोलत बोलियां ।।
नयन आंज मुख मांडि स्याम को सब मिलि करत कलोरियां।
सूरदास प्रभु सब सुख क्रीड़त बिहरत व्रज की खोरियां ।।

—श्रीसूरदासजी

'भक्त-भारत' मासिक पत्र के
नियम

१—भक्त-भारत प्रति मास की पहली तारीख को प्रकाशित होगा।

२—भक्त-भारत का

वार्षिक शुल्क	५)
विशिष्ट सदस्य शुल्क	११)
सहायक सदस्य शुल्क	२५)
आजीवन सदस्य शुल्क	५१)
संरक्षक शुल्क	११०)

३—भक्त-भारत में धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक लेख छप सकेंगे, सामयिक विचार तथा धर्म की जर्जरित अवस्थाओं पर प्रकाश डालने वाले लेखों का स्वागत होगा। माननीय लेखक बन्धुओं से प्रार्थना है कि उक्त विषयों पर सुललित लेखनी द्वारा एक या डेढ़ पृष्ठ की रचना जो पृष्ठ के एक ही ओर लिखी हो प्रति मास के प्रथम सप्ताह में ही भेजने की कृपा करें तभी पत्र में प्रकाशित हो सकेगी।

४—भक्त-भारत के ग्राहकों को पत्र व्यवहार में ग्राहक संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

५—भक्त-भारत का अङ्क यदि किसी कारणवश दिनाङ्क १५ तक पाठकों पर न पहुंचे तो पाठकों को चाहिये कि अपने पोस्ट आफिस में पता लगाने के उपरान्त कार्यालय को सूचित करें।

६—भक्त भारत के ग्राहकों को पत्र का सब भाँति का शुल्क अग्रिम (पेशगी) देना होगा।

७—भक्त-भारत के मनीआर्डर तथा पत्र व्यवहार-प्रकाशक के पते पर करें। 'भक्त-भारत' चार सम्प्रदाय आश्रम, वृन्दावन।

८—भक्त-भारत में आक्षेपयुक्त लेखों को प्रकाशित करने में सम्पादक स्वतन्त्र होगा।

९—पोस्टेज आने पर ही लेख आदि वापिस किये जा सकेंगे।

१०—भक्त-भारत का 'गुरु पूजा' अंक वी० पी० से भी भेजा जा सकेगा।

ब्रजभूमि से सम्बन्धित सभी साहित्यिक ग्रन्थों की प्राप्ति के लिए लिखिये—

व्यवस्थापक—'भक्त-भारत' चार सम्प्रदाय आश्रम, वृन्दावन (उ० प्र०)

Editer & Publisher : Ramdas Shastri
Printed at : Ratan Press, Vrindaban.

'भक्त-भारत' के पाठकों से

१--हम अपने पाठकों से सानुरोध आग्रह करते हैं कि वे 'भक्त-भारत' को और अधिक सुन्दर बनाने में हमारा सहयोग करें। अपने विचार एवं सुझाव हमें लिख कर भेजें। समाज और धर्म का तालमेल बिठाने संबंधी लेख तथा कविताओं का हम स्वागत करेंगे। हमें ऐसे साहसी एवं निष्पक्ष लेखकों की आवश्यकता है—जो धर्म और समाज की परम्परागत पद्धतियों पर युक्ति-युक्त एवं प्रामाणिक विचार प्रकट कर सकें। श्रेष्ठ लेखकों को पुरुष्कृत भी किया जायगा।

२–हम यह भी विचार रखते हैं कि 'भक्त-भारत' में हर दूसरे तीसरे माह खोज पूर्ण प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन करें। ब्रज एवं वृन्दावन में ऐसे अनेकों पुस्तकालय हैं, जहाँ प्राचीन हस्तलिपियों में अमूल्य साहित्य निधि भरी पड़ी है। ब्रज से बाहर भी जिन लोगों के पास ब्रज साहित्य संबंधी रचनायें, हस्तलिखित ग्रन्थ या मुद्रित ग्रन्थ हों--वे यथा शीघ्र हमें सूचित करें, हम उनके प्रकाशन की व्यवस्था करेंगे।

३—'भक्त-भारत' में एक शीर्षक 'पाठकों के पत्र' आगामी अङ्क से प्रकाशित होगा। इन पत्रों में पाठक अपनी रुचि के अनुसार धर्म, संस्कृति एवं समाज संबंधी समस्याओं को प्रस्तुत कर सकेंगे, पाठकों के प्रश्नों का समाधान भी इसी स्तम्भ में रहेगा।

४--'भक्तभारत' के प्रचार में आपका सहयोग अपेक्षित है, 'भक्त-भारत' के पांच नये ग्राहकों के २५) भेजकर आप हमारा हाथ बटा सकते हैं, बदले में 'भक्त-भारत' आपको ब्रज साहित्य का ५) मूल्य का ग्रन्थ भेंट करेगा, पांच रुपये का जो भी ग्रन्थ आप चाहोगे-भेज दिया जायगा।

समस्त पत्र व्यवहार का पता

व्यवस्थापक—'भक्त-भारत' कार्यालय, चार सम्प्रदाय आश्रम, वृन्दावन (उ.प्र.)